राजनीति में मध्यांतर (Interval During Politics) (एक)

(मैंने सक्रिय राजनीति से कुछ समय के लिए अवकाश लिया है. इस दौरान राजनीतिक कमेंटरी लिखना भी कम करने का विचार है. हालांकि कोई भी लेखन राजनीति के बाहर नहीं होता, फिर भी इच्छा है कि कुछ विषयों-प्रसंगों पर सीधे राजनीति से हट कर लिखा जाए. इसके अलावा कई रचनाकार और आलोचक मित्रों के लम्बे समय से तकाज़े चले आ रहे हैं, जो पूरा करने हैं. कुछ अपने मन में भी बातें हैं, जिन्हें समय देकर लिखने की इच्छा है. नीचे दिया गया वृतांत उस कड़ी में पहला है. यूं तो सभी लेखन विधा-विशेष में नहीं बांधा जा सकता. यह विधाओं के मिश्रण का दौर भी है. इस वृतांत को सुविधा के लिए चाहें तो (स्थानीय) यात्रा-वृत्तांत कह सकते हैं - जब आप अपनी चिर-परिचित जगह पर आते-जाते कोई नया अनुभव पाते हैं!)

किताब पढ़ने वाली लड़की

प्रेम सिंह

यह पिछले साल (2018) आठ मई की बात है. मैं अपने एमए के विद्यार्थी अनुपम भट्ट के साथ राजीव चौक से वैशाली जाने वाली मेट्रो में सवार हुआ. शाम चार बजे के आस-पास का वक्त था. डिब्बे में भीड़ थी, लेकिन ठसाठस वाली नहीं. डिब्बे में सवार हर आयु वर्ग के ज्यादातर लोग हमेशा की तरह अपने-अपने मोबाइलों में व्यस्त थे. कुछ देर बाद मुझे बैठने की जगह मिल गई. बैठने पर मेरा ध्यान डिब्बे के बंद दरवाज़े के साथ टेक लगा कर किताब पढ़ रही लड़की की तरफ गया. चौबीस-पच्चीस साल की वह लड़की बड़े इत्मीनान से किताब पढ़ने में तल्लीन थी. मैं प्लेटफार्म की तरफ खुलने वाले दरवाजे के साथ वाली सीट पर बैठा था. वहां से देख नहीं सकता था कि किताब का शीर्षक और विषय क्या है? झुक कर किताब के पीछे देखना उचित नहीं था. यह जरूर पता चल रहा था कि पेपरबैक में छपी वह किताब बिल्कुल नई थी. उसके इत्मीनान और तल्लीनता से मुझे लगा कि वह कोई कोर्स की या परीक्षोपयोगी किताब नहीं पढ़ रही है, जैसा कि कभी-कभार मेट्रो या बसों में देखने को मिल जाता है. हालंकि मुझे यह बिल्कुल नहीं लगा कि वह हिंदी, उर्दू, पंजाबी या किसी अन्य भारतीय भाषा की कोई किताब पढ़ रही होगी. यही लगा कि वह अंग्रेजी का कोई लोकप्रिय उपन्यास/थ्रिलर अथवा लोकप्रिय कहे जाने वाले किसी विषय, घटना या व्यक्ति से जुड़ी कोई अंग्रेजी की किताब होगी.

वह लड़की कॉलेज या यूनिवर्सिटी की छात्रा नहीं लग रही थी. किसी गैर-सरकारी संस्था (एनजीओ) में काम करने वाली भी मुझे वह नहीं लगी. सामान्य मध्यवर्गीय परिवार की वह लड़की शायद किसी प्राइवेट कंपनी या सरकारी दफ्तर में काम करती हो. उसके कंधे पर बीच के साइज़ का गुलाबी महिला बैग और एक हाथ में सामान से भरा पोलीथिन का लंबा-सा नया बैग लटका था. परिधान और सज्जा सुरुचिपूर्ण थे और व्यक्तित्व से बेफिक्री झलक रही थी. भावभंगिमा से मुझे वह लड़की आत्मस्थ और संतुष्ट लगी. लक्ष्मी नगर स्टेशन पार होने के बाद भीड़ कम हो गई थी. अनुपम को भी मेरे साथ सीट मिल गई. वह लड़की भी अपनी पास खाली होने वाली सीट पर बैठ सकती थी. लेकिन शायद उसका ध्यान उधर नहीं गया. वह किताब में डूबी रही. मैंने अनुपम का ध्यान किताब पढ़ने वाली लड़की की तरफ दिलाया. हम दोनों में इस बात पर चर्चा हुई कि स्मार्ट मोबाइल में डूबे मेट्रो के डिब्बे में यह

अकेली लड़की किताब पढ़े जा रही है! अनुपम व्यंग्य की सीमा छूने वाला हास्य रचने में माहिर है. उसने कहा कि चेतन भगत का जोर तो कब का उतर चुका है, यह लड़की अभी वहीँ अटकी लगती है!

भारत में आप बस, मेट्रो, रेलगाड़ी या हवाई जहाज़ में सफ़र करें; किसी महानगर, नगर, कस्बे में जाएं - घर, पार्क, दफ्तर, अस्पताल, यहां तक कि पुस्तकालय और कक्षाओं में भी ज्यादतर लोग स्मार्ट मोबाइल फोन, आइपेड, पामटॉप, अथवा लैपटॉप में व्यस्त नज़र आते हैं. जबसे मुफ्त डाटा बांटने की योजनाएं आईं हैं, तब से यह चलन संक्रामक रोग की तरह फ़ैल गया है. जिन बच्चों और किशोरों को डाटा की बिल्कुल जरूरत नहीं है, वे भी मुफ्त डाटा उपलब्ध होने के चलते मोबाइल में डूबे रहते हैं. डाटा अथवा वाईफाई के इस्तेमाल से नेट पर उपलब्ध सामग्री देखने-पढ़ने-सुनने की सबकी अपनी-अपनी पसंद है. समाज में इसके नुकसान-फायदों पर भी अक्सर चर्चा होती है. नुकसान-फायदे जो भी हों, यह स्पष्ट है कि इस चलन ने लोगों में विशेषकर मानविकी और समाजशास्त्र की पुस्तकें पढ़ने की रूचि बहुत हद कम कर दी है. इन विषयों के स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थी भी पाठ्यक्रम में निर्धारित किताबें/रचनाएं और संदर्भ ग्रंथ पढ़ने में रूचि नहीं दिखाते. पता नहीं ऐसा कोई सर्वेक्षण हुआ है या नहीं, देखने से यही लगता है कि पहले जो लुगदी साहित्य बड़े पैमाने पर पढ़ा जाता था, उसमें भी पहले से भारी गिरावट आई है. एक स्थायी नुकसान यह हो रहा है कि चौबीस घंटे विजुअल्स की दुनिया से घिरे मनुष्य की कल्पनाशीलता का जैसे हरण कर लिया गया है.

प्रीत विहार स्टेशन के बाद वह लड़की बंद दरवाज़े के पास खाली सीट पर बैठ गई. उसके बैठते वक्त किताब के शीर्षक पर मेरी निगाह पड़ी. वह प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' पढ़ रही थी. लड़की की इस कदर तल्लीनता का कारण अब समझ में आया. 'निर्मला' है ही सांस रोक कर पढ़ जाने वाली रचना. प्रेमचंद की यह कथाकृति उनके अन्य उपन्यासों के मुकाबले आकार में छोटी है और कथानक दो पात्रों के बीच संवादों के ज़रिए आगे बढ़ता है. जो संक्षिप्त विवरण आते हैं, वे भी कथासूत्र को तेज़ी से आगे ले जाने वाले हैं. इस संवाद-धर्मी रचना में खुद लेखक बीच-बीच में पाठक से संवाद करता है. मैंने सोचा कि आज के ज़माने की इस लड़की के मन में 'निर्मला' को पढ़ते हुए क्या घटित हो रहा होगा? मुझे नहीं लगा वह लड़की बौद्धिक और अकादमिक हलकों में प्रचलित नारीवाद के सिद्धांतों और बहसों के बारे में ख़ास जागरूक होगी, और उस नज़रिए से 'निर्मला' का पाठ कर रही होगी. वह सामान्य पाठक ही थी, और 'निर्मला' के साथ तादात्मय बनाने में उसे कोई बाधा नहीं आ रही थी.

मैं कड़कड़डूमा स्टेशन पर उतर गया. तब तक उस लड़की ने एक बार भी मोबाइल का इस्तेमाल नहीं किया था, जो उसके बैग में रहा होगा. वह लड़की अगले आनंद विहार रेलवे स्टेशन पर शायद नहीं उतरी होगी. कौशाम्बी या उसके आगे अंतिम वैशाली स्टेशन पर उतरी होगी, जहां रिहायशी बस्तियां हैं. वहां से वह अपने घर गई होगी. उपन्यास अभी करीब आधा बचा हुआ था. पता नहीं उसका इरादा निर्मला की "विपत्ति-कथा" को घर पहुंच कर समाप्त करने का बना था, या अगले दिन फिर मेट्रो के सफ़र में उसे पढ़ेगी?

मैं 15-20 मिनट का रास्ता पैदल चल कर जब तक घर पहुंचा, किताब पढ़ने वाली लड़की का ध्यान बना रहा. मेरे दिमाग में ख़याल आया कि लड़की ने वह किताब कहां से ली होगी? दिल्ली के मध्यवर्गीय परिवारों में पुस्तक-संग्रह होने की कल्पना नहीं की जा सकती. देहात से लेकर महानगर तक भारतीय

घरों में किताबों के लिए कोई स्थान निर्धारित नहीं होता है. उस लड़की का परिवार भी अपवाद नहीं होगा. लेखकों, कुछ संजीदा पत्रकारों, कॉलेज-विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षकों के अलावा शायद ही किसी दिल्लीवासी के घर में पुस्तकालय हो, जिसमें साहित्य, कला, दर्शन, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि की कुछ पुस्तकें संगृहीत हों. दिल्ली में यात्रा करते हुए आप चौतरफा दिल्ली का 'विकास' देखते चलते हैं. दिल्ली और एनसीआर में आपको एक से एक भव्य होटल, रिसोर्ट, मॉल, शोपिंग कॉम्प्लेक्स, फ़ूड कोर्ट, रेस्टोरेंट, क्लब, पब, बेंक्विट, पार्क, पार्किंग, ऑफिस कॉम्प्लेक्स, स्पोर्ट्स काम्प्लेक्स, अस्पताल-नर्सिंग होम, स्कूल आदि मिलते जाएंगे. हर बस्ती में उपभोक्ता वस्तुओं के अपने कई-कई बाज़ार हैं, जो एक इशारे पर सब सामान घर पहुंचाते हैं. लेकिन दिल्ली और एनसीआर की किसी बस्ती में किताबों की दुकान नहीं मिलेगी. हर इलाके में केवल स्कूल के पाठ्यक्रम और प्रतियोगी परीक्षाओं की किताबों और स्टेशनरी की एक-दो दुकानें जरूर होती हैं. किताबों के महंगा और सस्ता होने का सवाल अलग है. इन सब जगहों पर जाने वाले लोग काफी खर्च करते हैं. अगर किताबें सस्ती भी हों, तो लोग खरीदेंगे नहीं. उनकी रूचि किताबों में नहीं है. अगर होती तो मांग और सप्लाई के नियम के तहत दिल्ली और एनसीआर के हर बाज़ार में अन्य उपभोक्ता सामानों की तरह साहित्य, कला, समाज, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि की अच्छी से अच्छी किताबों की दुकानें होतीं.

जबसे प्रेमचंद के साहित्य का कॉपीराइट ख़त्म हुआ है, कई छोटे-बड़े प्रकाशकों ने उनके उपन्यास व कहानियां और उनके अनुवाद छापे हैं. पहले से भी रेलवे स्टेशन के बुक स्टालों पर प्रेमचंद की कुछ कृतियां मिलती रही हैं. हो सकता है उस लड़की ने रेलवे स्टेशन या दिल्ली में लगने वाले किसी पुस्तक मेले से वह किताब खरीदी हो. या किसी मित्र से उसे किताब मिल गई हो. यह विचार भी मेरे दिमाग में घूमा कि पढ़ने के बाद लड़की किताब का क्या करेगी? क्या वह खुद पढ़ने के बाद परिवार के सदस्यों को किताब पढ़ने के लिए कहेगी? क्या वे पढ़ेंगे? क्या उसके पड़ोस में कोई उस किताब में रूचि दिखाएगा? मुझे अपने बीए के दिन याद आ गए. मैं कॉलेज के पुस्तकालय से प्रेमचंद के उपन्यास और कहानियां इशू करा कर ले जाता था, ताकि लोग पढ़ सकें. पुरुषों में तो केवल एक मित्र ही पढ़ते थे और पढ़ कर चर्चा भी करते थे, लेकिन चार महिलाओं ने 'रंगभूमि' और 'गोदान' सहित प्रेमचंद के अधिकांश उपन्यास और कहानियां चाव से पढ़े. वे महिलाएं पहले से कुछ नई-पुरानी सामाजिक व फ़िल्मी पत्रिकाएं पढ़ती थीं. प्रेमचंद ने जब साहित्य पढ़ने की चाट लगा दी तो मैं तोलस्ताय के 'अन्ना केरेनिना' और 'युद्ध और शांति' जैसे उपन्यास ले गया, जो उतने ही चाव से पढ़े गए. प्रेमचंद नए लेखकों की पाठशाला तो हैं ही, नए पाठकों की भी अच्छी पाठशाला हैं. ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'रंगभूमि' उपन्यास जलाए जाने पर यह बात जोर देकर कही थी.

सहृदय तो किसी न किसी स्तर पर गांव की सभी महिलाएं थीं. हमारे गांव में होने वाली होली (छदों और तर्जों में निबद्ध किस्सों का साज़ (वाद्ययंत्र) के साथ गायन, जो पूरे फागुन और चैत्र के महीनों में होता था), रामलीला, रासलीला, आर्यसमाजी भजन (किस्से) - वे सभी की श्रोता और दर्शक रहती थीं. अलबत्ता स्वांग गांव के बाहर आयोजित होता था और उसमें महिलाएं नहीं जाती थीं. लोकगीत उनका अपना क्षेत्र था ही. एक परिवार में दो सगी बहनें ब्याह कर आई थीं. शाम के वक्त वे खेत से चारा आदि लाने के लिए घर से निकलती थीं तो पूरा रास्ते कोई न कोई लोकगीत गाती जाती थीं. मेरे द्वारा लाई गई किताबें पढ़ने वाली महिलाएं साक्षर भी थीं. उपन्यास और कहानियां पढ़ कर उनकी सहृदयता और संवेदना का आकाश विस्तृत हुआ था.

मुझे आगे यह उत्सुकता हुई कि क्या वह लड़की खुद प्रेमचंद के कथा-संसार में पहले से प्रवेश कर चुकी है, या आज उसका पहला कदम है? क्या वह किन्हीं अन्य भारतीय और विदेशी लेखकों के बारे में जानती है? अगर वह प्रेमचंद के कथा-संसार में आज भी प्रवेश कर रही हो तो उसकी सहृदयता का आकाश फैलना शुरू हो जाएगा. हो सकता है वह प्रेमचंद की अन्य रचनाओं तथा अन्य लेखकों की रचनाओं तक भी पहुंचे. अज्ञेय ने यह सही कहा है कि रचना पढ़ने के बाद हम वही नहीं रहते जो रचना पढ़ने के पहले थे. क्योंकि लेखक ने एक बदली हुई संवेदना से यथार्थ को देखा और चित्रित किया होता है, इसलिए वह चित्रण पढ़ कर पाठक की संवेदना भी बदली हुई होती है. अज्ञेय का स्मरण करके मैं आश्वस्त हुआ कि वह लड़की 'निर्मला' पढ़ने के बाद परिवार, दफ्तर, उत्सव आदि में होने वाली चर्चाओं में कुछ अलग ढंग से हिस्सा लेगी. क्योंकि प्रेमचंद हमें तटस्थ नहीं बनाते, संपृक्त (इन्वोल्व) करते हैं.

अगर यहां मोबाइल अथवा कंप्यूटर पर यूट्यूब, नेटफ्लिक्स, व्हाट्सअप, फेसबुक आदि की मार्फ़त देखी जाने वाली सामग्री; और समकालीन भारत के परिवारों, दफ्तरों और विभिन्न उत्सवों में होने वाली चर्चाओं के विस्तार और गहराई में जाएं तो वहीँ गर्क होकर रह जाएंगे. इस दौर में हम कहने भर को नागरिक समाज रह गए हैं. नागरिकता-बोध के साथ हमने सौंदर्य-बोध भी लगभग गवां दिया है. नागरिक समाज में राष्ट्रीय जीवन से संबंधित विषयों की चर्चा तो कलही हो ही गई है; साहित्य और कला के हलकों में भी ज्यादातर एक झगड़ालू और ईर्ष्यालु किस्म का साहित्य अथवा कला विमर्श पसरा हुआ दिखता है.

'निर्मला' की निर्मला की थोड़ी चर्चा करते हैं. निर्मला को 18-19 साल का जीवन मिला. उसमें 3-4 साल का वैवाहिक जीवन है. उसके इसी जीवन की "विपत्ति-कथा" प्रेमचंद ने इस उपन्यास में कही है. उसकी शादी की तैयारी के ऐन मौके पर उसके पिता की हत्या हो जाती है. लड़के वाले और खुद लड़का यह मान कर शादी से इनकार कर देते हैं कि निर्मला की मां दहेज़ में मोटी रकम नहीं दे पाएगी. पंद्रहवें साल में चल रही निर्मला की शादी करीब 50 साल के विधुर वकील मुंशी तोताराम के साथ होती है, जिसके पहली पत्नी से तीन लडके हैं. बड़ा लड़का निर्मला का हमउम्र है. उसके पति को दोनों के बीच आकर्षण होने का शक होता है और वह लड़के को हॉस्टल भेज देता है. पिता के शक के बारे में पता लगने पर लड़का डेलेरियम की हालत में प्राण त्याग देता है. मृत्यु से पहले वह निर्मला के पैरों पर गिर कर अगले जन्म में उसी के गर्भ से पैदा होने का आशीर्वाद मांगता है. सच्चाई जानने पर निर्मला के पति को गहरा आघात लगता है. पुत्र-शोक में वे ठीक से काम नहीं कर पाते और उनका घर नीलाम हो जाता है. निर्मला एक बेटी को जन्म देती है, जिसकी शक्ल मुंशी तोताराम के बड़े बेटे मंसाराम से मिलती है. लड़की का नाम आशा रखा जाता है. वह लड़की तोताराम के निराश जीवन में कुछ आशा का संचार करती है. वे एक बार फिर अपने पेशे में मेहनत से जुट जाते हैं.

बड़े भाई की मौत के बाद तोताराम का दूसरा लड़का पिता के प्रति कटु और उद्दंड हो जाता है. वह गलत सोहबत में पड़ कर निर्मला के गहने चुराता है और भेद खुलने पर आत्महत्या कर लेता है. तोताराम का तीसरा लड़का इस बीच अत्यंत कृपण और कर्कशा बन चुकी निर्मला के व्यवहार से आजिज़ आकर एक साधू के साथ भाग जाता है. मुंशी तोताराम बिलकुल टूट जाते हैं और यह अंतिम चोट खाकर निर्मला को बुरा-भला कहते हैं. वे सब छोड़ कर अपने बेटे की खोज में निकल जाते हैं और

महीने भर बाद भी उनकी कोई सूचना नहीं मिलती. निर्मला, इस विपत्ति में अपनी सहेली सुधा से मिल कर कुछ ख़ुशी पाती है. सुधा के पति (जिनसे निर्मला का पिता के रहते विवाह तय हुआ था) एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में निर्मला को अपने घर अकेला पाकर उसके प्रति आसक्ति का इज़हार कर बैठते हैं. सुधा के पति के व्यवहार पर स्तंभित निर्मला तेजी से उस घर से निकलती है. बाहर से लौटी सुधा उसे जाता देख रोकना चाहती है, लेकिन वह नहीं रुकती. सुधा को इस घटना पता चल जाता है और उसके पति आत्महत्या कर लेते हैं.

इसके करीब एक महीने बाद निर्मला बीमारी में बिना इलाज़ के दम तोड़ देती है. उस समय उसके पास केवल मुंशी तोताराम की विधवा बहन होती है, जो निर्मला के ब्याह कर आने के पहले से उस घर में रहती थी. दम तोड़ने से पहले निर्मला उसे कहती है, "बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूं. अगर जीती-जगती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा. मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूं. चाहे क्वारी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही मेरी आपसे विनय है. ... " ... "निर्मला की सांस बड़े वेग से चलने लगी. फिर खाट पर लेट गई, और बच्ची की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा, जो उसके जीवन की सम्पूर्ण विपत्ति-कथा की वृहद् आलोचना थी, वाणी में इतनी सामर्थ्य कहां?" निर्मला की लाश को जब कोठरी से आंगन में निकला जा रहा होता है, तो सवाल उठता है कि दाह कौन करेगा! तभी मुंशी तोताराम अकेले आंगन में प्रवेश कर बकुचा (अटैची) टेकते हैं.

निर्मला ने जीते-जी जो दुःख और क्लेश झेले, वे तो हैं ही, उसकी मौत एक भयानक ट्रेजेडी है. निर्मला जीवन से हार कर खुद मौत को गले लगाती है, लेकिन अपनी दो साल की बच्ची के भविष्य को लेकर मर्मांतक पीड़ा से गुजरते हुए. मौत के मुहं में फंसी निर्मला ने जिस दृष्टि से बच्ची की ओर देखा, खुद प्रेमचंद उस भाव की अभिव्यंजना में अपने को असमर्थ पाते हैं. किताब पढ़ने वाली वह लड़की मुझे कभी नहीं मिलेगी. उसके बारे में लिखा गया यह वृत्तांत भी वह नहीं पढ़ेगी. लेकिन मेरे मन में यह शुरूआती जिज्ञासा बनी रहेगी कि उस 24-25 साल की लड़की के ह्रदय पर उम्र के 19 साल भी पूरे न कर पाने वाली निर्मला की कहानी का क्या प्रभाव पड़ा? निर्मला की रचना प्रेमचंद ने अपने दौर के समाज से गारा-मिट्टी लेकर की थी. वह पराधीन भारत का समाज था. किताब पढ़ने वाली लड़की का भारत 'नया' है. नए भारत की लड़की ने निर्मला के साथ कैसे और कैसा पुल बनाया होगा!

यह 'रहस्य' कभी पता नहीं चल पाएगा. लेकिन और भी तो लड़कियां होंगी, जिन्होंने उम्र के किसी पड़ाव पर 'निर्मला' पढ़ा होगा! क्या वे इस कमी को पूरा करेंगी? बहरहाल, यह आशा की जा सकती है कि किताब पढ़ने वाली लड़की जब भी सफ़र पर निकलेगी, कोई न कोई किताब साथ रखेगी - सफ़र चाहे रोजाना घर से जाने और आने का हो, या दूरदराज़ का.

सितंबर 2019